प्राकृतिक विधि सिद्धांत के परिपेक्ष्य में मुस्लिम विधि का स्वरुप

डॉ. ज़रफिशॉ ज़ैदी

सहायक आचार्य–दर्शनशास्त्र,

राजकीय महाविद्यालय अजमेर

नैसर्गिक विधि परम्परा और प्रत्यक्षवादी परम्परा को सामने रखे तो आसानी से यह कह सकते हैं कि इस्लामी विधि चिंतन नैसर्गिक विधि चिंतन से अधिक साम्य रखता है। जैसा कि हमने पूर्व अध्यायों में देखा कि इस्लाम एक तत्त्वमीमांसा प्रतिपादित करता हुआ उसके परिप्रेक्ष्य में एक मूल्यमीमांसा विकसित करता है। उन मूल्यों को मानवीय जीवन में मूर्त रूप देने के लिए जितने नियम हो सकते हैं, कानून उनका एक भाग मात्र है। वहीं कानून वैध है जो या तो उच्चतम कानून – स्वयं कुरान में लिखित है या हजरत साहब के आचरण में अभिव्यक्त है – या उस विवेक से निस्तृत है, जो विवेक ईश्वरीय इच्छा के अनुकूल क्या है, उसे देख पाता हो। ईष्वर ने प्रकृति कासंचालन जिस रूप में व्यवस्थित किया है, वह मानवीय विवेक को दिशा प्रदान करता है।

नैसर्गिकवादियों की यह मूल मान्यता 'निसर्ग में जो है' उसको ही लेकर निसर्ग 'असण्यकरणीय कर्म' के रूप में मानव को आदेश देता है–के अनुरूप इस्लामी परम्परा में भी मानवीय समाज के नियमन व संचालन के लिए किन्हीं आदर्श सिद्धान्तों के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। इन आदर्श कानूनों को 'ईश्वरीय इच्छा' के रूप में देखा जा सकता है और इस 'ईश्वरीय इच्छा के आगे आत्म समर्पण' को इस्लाम कहा गया है।[1] ईश्वरीय इच्छा के अनुरूप आदर्श कानून का ज्ञान प्राप्त करने के दो साधन सर्वसुलभ हैं–अल्लाह का फेल (प्रकृति) और अल्लाह का कौल (ईश्वरीय वाणी) । अल्लाह का फेल कुदरत (प्रकृति) है। प्रकृति की व्यवस्था को अपने विचार एवं युक्ति से सूत्रबद्ध करने से व्यक्ति को जीवन विषयक कर्तव्यों का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। जैसे प्रकृति में प्रत्येक वस्तु–हवा, पानी, बादल अपने लिए नहीं वरन किसी अन्य के प्रयोजन को सिद्ध करते दिखाई देते हैं, इससे यह नियम निर्मित किया जा सकता है कि मनुष्य को अपने लिए नहीं अपितु अन्य के लिए जीवन जीना चाहिए। उसे पृथ्वी पर ईश्वर के प्रतिनिधि मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति, उन्नति एवं विकास के लिए कर्म करना चाहिए। चूँकि मनुष्य, इस सम्पूर्ण विश्व व्यवस्था, जो ईश्वर द्वारा नियन्त्रित है, का एक भाग है, उसके लिए यह आवश्यक

है कि वह स्वयं को इस व्यवस्था के अनुकूल रखे, इस रूप में इस्लामी चिंतन एक्विनासीय चिंतन से ठीक साम्य रखता दिखाई पड़ता है। इस्लामी विधि चिंतन के अनुसार दैवी प्रकाशन के माध्यम से मनुष्य को ऐसी आचार संहिता का ज्ञान प्राप्त हो सका है जो मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन पर लागू होती है, जिसे दीन (धर्म) कहा गया। इस विचार के अनुसार मनुष्य का कोई कर्म ऐसा नहीं है जिसका दीन या धर्म से निकट या दर का सम्बन्ध न हो। तब यहाँ विधि धर्म का एक भाग हो जाती है। कानून एक स्वायत्तशासी तन्त्र नहीं वरन् धार्मिक व नैतिक आदेशो को प्रस्थापित या रक्षित करने के उद्देश्य से निर्मित एक साधन कहा जा सकता है। एक कानून, तभी तक 'कानून' शब्द से संज्ञायित किया जा सकता है जबकि वह किन्हीं शाश्वत मल्यों को अन्तर्निहित करता है, जैसे विवाह चरित्र की रक्षा एवं पवित्रता के लिएय मेहर, नारीत्व के सम्मान के लिए, भरण–पोषण आश्रितों की सहायता के लिए अस्तित्व में आया। इसलिए कहा गया है कि इस्लामी विधि के नियम सद्गुणों के अस्तित्व से वैध होते हैं । इस्लामी विधि विचारधारा में जो कानून और नैतिकता में घनिष्ट सम्बन्ध दिखाई दे रहा है, वह नैसर्गिक विधि सिद्धान्त की मूल मान्यता रही है।

एक्विनास का यह विचार कि धार्मिक विधि, पूर्ण रूप से प्राकृतिक विधि नहीं है, परन्तु प्राकृतिक विधि के विपरीत भी नहीं है बल्कि उससे सामंजस्यता रखती है, इस्लामी विधि चिंतन की आधार स्वीकृति मानी जा सकती है। इस परम्परा में ऐसा विश्वास किया जाता है कि प्रत्यक्ष दैवी प्रकाशन (कुरान) और अप्रत्यक्ष दैवी प्रकाशन (सुन्ना) का सीधा सम्बन्ध मानवीय प्रकृति से है। इस्लामी विधि मानवीय प्रकृति के विरुद्ध जाकर किन्हीं नियमों का प्रतिपादन नहीं करती बल्कि प्राकृतिक इच्छाओं की पूर्ति का एक आदर्श मार्ग प्रस्तुत करती है। मानवीय प्रकृति की स्वाभाविक इच्छाओं की पूर्ति होते हुए सामान्य शुभ की अवहेलना नहीं हो, इस्लामी विधि ऐसा प्रयास करती है। जैसे काम की प्राप्ति का ऐसा प्रयत्न किया जाए जो धर्म की मूल भावना की उपेक्षा न करे, धन कमाया जाए परन्तु धर्म की मर्यादा का उल्लंघन न होने पाए। स्वहित के लिए कार्य किए जाएँ लेकिन परहित की अवहेलना न होने पाए, तब कहा जा सकता है कि इस्लामी विधि तन्त्र मानव की स्वाभाविक प्रवृत्तियों और सामाजिक शुभ के मध्य सामंजस्य का प्रयास करता दिखाई देता है।

इस्लामी विधि विचारधारा में विधि के मूल सिद्धान्त दैवी प्रकाशन द्वारा अस्तित्व में आए हैं, परन्तु इस्लामी विधि तन्त्र में मानवीय विवेक को विधि के प्रमुख स्रोत के रूप में भी स्वीकार किया गया है। इस्लामी विधि के मूल स्रोत इज्मा और कयास इसी मान्यता पर आधारित हैं परन्तु एक्विनास के मत की ही भाँति, यहाँ भी विवेक ईश्वरीय इच्छा से अनुकूलता रखता हुआ ही

मान्य हो सका है, बल्कि यों भी कहा जा सकता है कि विवेक वही है जो ईश्वरीय व्यवस्था को ठीक ठीक समझ सके।

उपर्युक्त विवेचन में हमने देखा कि इस्लामी विधि चितन को दार्शनिक दृष्टि से नैसर्गिक नियमों की विचार परम्परा में रखा जा सकता है। हमारे अपने मत में कानून को समझने के लिए यह एक बेहतर दार्शनिक दृष्टिकोण है। कानून एक विस्तृत और जटिल संघटना है जिसे कई दृ ष्टिकोणों में देखा जा सकता है और जिसके स्वरूप के बारे में विविध दार्शनिक प्रश्न उठाए जा सकते हैं। लेकिन कौन–सा प्रश्न अधिक मूलगामी है, यह सदैव विवेच्य विषय रहता है। हम ऐसा भी कह सकते हैं कि उपर्युक्त वर्णित दोनों विचारधाराएँ वास्तव में कानून के स्वरूप के बारे में एक प्रश्न के दो भिन्न उत्तर प्रस्तुत नहीं करती बल्कि कानून के बारे में कौन–सा प्रश्न महत्त्व का है, इसी पर दष्टि भेद दिखाई पड़ता है। किन्हीं दो दार्शनिक मतों में विरोध इस रूप में भी होता है कि क्या स्थापनाएँ प्रस्तुत की जाती है लेकिन कई बार दार्शनिक मतान्तर इस रूप में भी सामने आता है कि किस स्थापना के बारे में कहा जाना जरूरी है या गैर जरूरी है। या कि किस प्रश्न को सुलझाना जरूरी या गैर जरूरी है। नैसर्गिक नियमों की विचार परम्परा कानून को विवेक की अभिव्यक्ति के रूप में देखती है और ऐसी प्रयोजनात्मक संस्था के रूप में देखती है, जिसके अध्ययन के लिए उसके प्रयोजन के संदर्भ के बिना विचार विमर्श असंभव लगता है। तमाम मानवीय सृजन किसी प्रयोजन की पूर्ति हेतु अस्तित्व में आते हैं और यदि यह सत्य है तो उस सृजन को या कि उस संस्था को समझने के लिए उसके प्रयोजनात्मक पक्ष को यदि नहीं देखा जाए तो तत्सम्बन्धी विचार विमर्श युक्तियुक्त नहीं जान पड़ता है। कानून कई प्रयोजनों की पूर्ति हेतु अस्तित्व में आते हैं किन्तु उनमें भी जो प्रयोजन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, वह है समाज में न्याय युक्त व्यवस्था की स्थापना। इसलिए यदि कानून को समझना हो तो यह प्रश्न सर्वाधिक महत्त्व का बन जाता है कि कोई कानून तंत्र न्याय की कौन–सी दृष्टि को अभिव्यक्त करता है और वह दृष्टि स्वयं उपयुक्त है या नहीं। जैसा कि सभी जानते हैं कि न्याय सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सामाजिक सद्‌गुण है और जैसाकि रॉल्स कहते हैं ''न्याय सभी सामाजिक संस्थाओं के लिए वैसे ही जरूरी है जैसे कि सत्य सभी सैद्धान्तिक गवेषणाओं के लिए जरूरी है।'' कोई भी सिद्धान्त तंत्र यदि सत्य की ओर नहीं ले जाता तो उसे पुनः संरचित करना पड़ता है, वैसे ही यदि कोई कानून तंत्र न्याय की किसी संगत व्यवस्था को अपने में समाहित नहीं करता तो कानून तंत्र में आवश्यक परिवर्तन करना जरूरी हो जाता है। कानून एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसका सर्वाधिक सम्बन्ध न्याय से है और इसलिए हम कानून की अदालतों को न्याय की अदालतें कहते हैं। इस रूप में ऐसा लगता है कि कानून का नैतिकता से आंतरिक और सम्प्रत्यात्मक सम्बन्ध है और जैसाकि हम देख चुके हैं कि नैसर्गिक नियमों के

विचार की यह सर्वाधिक प्रमुख मान्यता है। कानून के बारे में तथ्यात्मक और मूल्यात्मक प्रश्नों में जो भेद किया जाता है वह सुविधा का प्रश्न (च्तंहउंजपब ब्वदेपकमतंजपवद) हो सकता है, वास्तव में तो किसी भी कानून को उसके औचित्य के प्रश्न से अलग करके देखा ही नहीं जा सकता। औचित्य का प्रश्न कानन के बनने में, उसके लागू होने में, कानूनी समाधानों में सभी जगह महत्त्वपूर्ण बना रहता है। इस दृष्टि से हमें लगता है कि इस्लामी विधि तंत्र भी कानून को न्याय की अवधारणा से गहरे जोड़ता हुआ एक सुदृढ़ दार्शनिक आधार पर स्थापित है।

इस्लामी तत्त्व मीमांसा में जिस प्रकार तौहीद (एकेश्वरवाद) सर्वोच्च आध्यात्मिक मूल्य है, उसी प्रकार इस्लामी मूल्य मीमांसा में अद्ल (न्याय) सर्वोच्च सामाजिक–नैतिक मूल्य के रूप में सुप्रतिष्ठित है जिसे सामाजिक जीवन में एक ऐसे नियामक मूल्य के रूप में स्वीकार किया गया है जिसके अनुरूप व्यवहार करना कुरान की दृष्टि में धर्म परायणता है। कुरान कहता है कि ''ऐ वे लोगो, जो ईमान लाये! तुम अल्लाह के लिए न्याय पर मजबूती के साथ कायम रहने वाले बनो, न्याय की गवाही देते हुए। देखो कहीं ऐसा न हो कि किसी जाति से तुम्हारी घृणा और शत्रुता उनके साथ न्याय का बर्ताव करने से रोक दे। नहीं नहीं बल्कि न्याय किया करो क्योंकि यही धर्म परायणता है। इस दृष्टि से देखें तो लगता है कि एक मुसलमान के लिए इस्लामी मूल्य मीमांसा को स्वीकार करते हुए अपने आचरण को उन मूल्यों के द्वारा निर्धारित दिशा की ओर निर्दिष्ट करना दरअसल इस्लामी तत्त्व मीमांसीय मूल्यों को संयोजित करना ही है। कुरान न्याय के समान वितरण पर जोर देते हुए कहता है कि ''ऐ वे लोगो, जो ईमान लाए! तुम न्याय पर मजबूती के साथ जमे रहने वाले बनो। अल्लाह के लिए न्याय की गवाही देते हुए। चाहे वह गवाही तुम्हारे खुद अपने या माता पिता और नातेदारों के विरुद्ध ही क्यों न पड़े। कोई धनवान हो या निर्धन अल्लाह उन दोनों से ज्यादा करीब है। इसलिए तुम न्याय करने में अपनी इच्छाओं के पीछे मत चलो।'' ''जब तुम बात कहो तो ऐसी कहो जो न्याय पूर्ण हो, चाहे मामला अपने नातेदारों ही का क्यों न हो।''[5]

इस्लामी विधिक परम्परा में ऐसा माना जाता है कि न्याय के सर्वोच्च आदर्श की स्थापना और रक्षा के लिए ही इस्लामी कानून तंत्र अस्तित्व में आया है इसलिए कुरानबार–बार पैगम्बर साहब और उनके बाद में आने वाले न्यायाधीशों को निर्देश देते हुए कहता है कि – ''अगर तुम लोगों के बीच फैसला करो तो न्यायपूर्वक फैसला करो, निसन्देह ईश्वर न्याय करने वालो को पसन्द करता है।''[6]

''ऐ मुहम्मद ! तुम लोगों से कह दो कि मैं ईमान लाया हर उस किताब पर जिसको ईश्वर ने अवतरित किया है और मुझे यह आदेश दिया गया कि मैं तुम्हारे बीच न्याय करूँ।''[7]

''ईश्वर तुम्हे आदेश देता है कि लोगों की अमानतों को उन तक पहुँचा दो और जब तुम लोगों का निर्णय करो तो न्याय के साथ करो। ईश्वर तुम्हें बेहतरीन उपदेश दे रहा है, याद रखो ईश्वर सुनने और देखने वाला है।''[8]

कुरान के न्याय सिद्धान्त के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस्लाम धर्म मानवीय समाज में न्याय की स्थापना और रक्षा के लक्ष्य के लिए अवतरित हुआ है और विधि उसका एक पक्ष है।

न्याय की तमाम अवधारणाएँ यह मानकर चलती है कि समान के साथ समान व्यवहार करो लेकिन समान किसे समझा जाए, इसमें विचार भेद हो सकता है। शास्त्रीय ग्रीक परम्परा के विचारकों, जैसे कि प्लेटो ने समाज को तीन वर्गों में विभक्त करके उन्हें असमान माना और दासों को नागरिकता के अधिकार से भी वंचित कर दिया। इस रूप में प्लेटो का न्याय विचार सारभूत असमानता पर टिका है। हिन्दू शास्त्रीय परम्परा भी समाज को चार वर्गों में विभक्त करती है और तदनुकूल उनके अधिकार और कर्तव्यसुनिश्चित करती है। न्याय विषयक आधुनिक दृष्टिकोण जो मनुष्य मात्र की समानता के मूल्य पर आधारित है, जो आधुनिक विश्व में या कम से कम तमाम प्रजातांत्रिक व्यवस्थाओं में सर्वस्वीकृत है जिसे न्याय का समता मूलक सिद्धान्त भी कह सकते हैं और जो आज के भारतीय संविधान में भी अभिव्यक्ति पा रहा है, न्याय का वही सिद्धान्त कुरान में प्रतिष्ठित है। कुरान कहता है ''विश्वास रखो कि अरबी नबी को मानने वाले हो या यहूदी ईसाई हो या साबी जो भी अल्लाह और अंतिम पर ईमान लायेगा और सत्कर्म करेगा उसका प्रतिदान उसके प्रभु के पास है और उसके लिए किसी भय या शौक का मौका नहीं है।''[9] पैगम्बर साहब ने अपने आखरी हज के समय अराफात के मैदान में कहा कि ए लोगों ! मेरी बात को ध्यान से सुनो और समझो। न अरब को और अरब पर और न गैर अरब को अरब पर श्रेष्ठता प्राप्त है, तुम सब आदम की संतान हो।" इस प्रकार इस्लाम ने धर्म, वंश, जाति, लिंग या क्षेत्र के आधार पर मनुष्यों को असमान नहीं माना है और समानता का यही मूल्य इस्लामी कानून तंत्र में प्रतिबिम्बित होता हुआ दिखाई पड़ता है। आधुनिक समतामूलक न्याय के सिद्धांत के अनुरूप, इस्लाम स्त्री पुरुष को यथासंभव समानता प्रदान करता है। स्त्रियों को पुरुषों के समान विवाह में स्वतंत्र पक्षकार माना गया है और उन्हें तलाक लेने और सम्पत्ति में उत्तराधिकार का अधिकार दिया गया है। आधुनिक न्याय के सिद्धान्त की दूसरी स्थापना प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करती है। कानूनी दृष्टि से अधिकतम स्वतंत्रता इस्लाम के दायरे में भी दिखाई पड़ती है। इस्लामी विधि तंत्र स्त्रियों की यथासंभव स्वतन्त्रता के पक्ष में है, विवाह को संविदा मानना, मेहर की अवधारणा, खुला का नियम, सम्पत्ति में उत्तराधिकार और ख्यार–उल–बुलूग का प्रावधान इसके कुछ उदाहरण है।

न्याय के ही सिद्धांत का तीसरा पक्ष, जो मानव मात्र की गरिमा के लिए तर्क प्रस्तुत करता है, वह भी इस्लामी चिंतन में पाया जाता है। इस्लाम ने मनुष्य को इस धरती पर ईश्वर का प्रतिनिधि माना। ईश्वर स्वयं कुरान में कहता है कि ''निश्चय ही हमने मनुष्य को अच्छी से अच्छी प्रकृति का बनाया।''[10]

''और हमने आदम की औलाद को श्रेष्ठता प्रदान की।''[11]

कुरान का कहना है कि समस्त प्रकृति ईश्वर की सर्वोच्च कृति 'मनुष्य' के उपभोग के लिए बनाई गई है। ईश्वर के प्रतिनिधि, मनुष्य के सम्मान की सुरक्षा के लिए कुरान ने कहा कि कोई गिरोह दूसरे गिरोह का मजाक न उड़ाये ... और एक दूसरे का अपमान न करे ... और न ही बुरे नामों से याद करे, न कोई किसी की पीठ पीछे बुराई बयान करे।[12] इस प्रकार इस्लाम ने मनुष्य के गरिमापूर्ण जीवन को एक आदर्श के रूप में स्वीकार करते हुए उसकी रक्षा के लिए अनेक कानून बनाये। जैसे कि जिहार, लिएन, नफ्कः, मेहर आदि।

न्याय के सम्प्रत्यय पर विचार करते हुए हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि न्याय मानवीय सामाजिक जीवन के सामूहिक हित से प्रत्यक्षतः जुड़ा हुआ एक ऐसा आदर्श है जो अन्य सामाजिक मूल्यों का नैतिक संश्लेषण करते हुए उन्हें सामाजिक जीवन में संयोजित करने या मूर्त रूप देने का प्रयास करता है ताकि मानव का आचरण मानवीय गरिमा के अनुकूल विवेकपूर्ण नियमों से विनियमित किया जा सके। जैसाकि हमने देखा एक सामाजिक व्यवस्था के रूप में इस्लामी कानून तंत्र न्याय की स्थापना और उसकीरक्षा के लक्ष्य को न केवल समर्पित दिखाई पड़ता है, बल्कि नैसर्गिक नियमों की विचार परम्परा की तरह इस्लामी विधि चिंतन में भी कानन और न्याय के अंतरंग सम्बन्ध का स्वीकार करता अर्थात् कानून इसलिए और उसी हद तक कानून जिस हद तक वह न्यायसंगत है या सामाजिक, नैतिक मूल्यों से जुड़ा रहता है, यदि तथ्यतः ऐसा नहीं हो रहा है तो कानूनों पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए इस दृष्टि से हम आगे आने वाले अध्याय में कानूनों का मूल्यांकन करते हुए यदि उनमें कोई परिवर्तन अपेक्षित है, तो उस पर विचार करेंगे।

संदर्भ सूची

1. रीव, एफ.ए.केलन–रिलीजन ऑफ इस्लाम, 1978

2ण सन्त एक्विनास–सुम्मा थ्योलोजिका, अनु. फादर्स–ऑफ डोमिनियन प्रोकिन्स लन्दन 1913. 1925ए अध्याय ब्

3ण कुरान : सूर : माइदा –9

4ण कुरान : सूर अननिसा, 135

5ण कुरान : सूर : अनआम, 153

6. कुरान : माइदा, 42

7ण कुरान : शूरा, 15

8ण कुरान : निसर, 58

9. कुरान : सूर अल षकरय 63

10. कुरान : सूर–ए–अततीन –4

11ण कुरान : सूर–ए–बन्नी इसराइल –70

12ण कुरान – हुजरात, 11.12

.....